Chap - 10

दशम् अध्याय

उपसंहार

'शब्द' और 'संगीत' का भावात्मक आवेग अपने ऐतिहासिक अनुसन्धान में उसी तरह अनखोजा है, जिस तरह मनुष्य के अविर्भाव का इतिहास। यह असंदिग्ध सत्य है कि, सृष्टि या जन्म के साथ ही मनुष्य के सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों के अन्तर्गत उसके हृदय में संगीतमय शब्द फूटे होंगे, किन्तु इस शब्द-संगीत परम्परा की प्रामाणिक पुष्टि ऋग्वेद और सामवेद की ऋचाओं से होती है। कालान्तर में इन्हीं ऋचाओं के आधार पर गीत के 'टेक' की संरचना हुई और यजुर्वेद के तीन स्वरों की कल्पना से सामवेद तक आते-आते सप्त स्वरों का निर्धारण हुआ। इस प्रकार स्वर और संगीत का आधार ग्रहण कर 'गीत' शब्दबद्ध हुआ और वैदिक साहित्य के पश्चात् बौद्ध साहित्य में, गाथाओं के माध्यम से इनकी सर्जना हुई। अब समय की आवश्यकता यह थी कि गीत की व्यावहारिकता को सिद्धान्त का जामा पहनाया जाय। ऐसे में आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' का निर्माण किया और श्रेष्ठतम नाटकों में अनेक सूत्रवाक्यों द्वारा न केवल नाटक को परिभाषित ही किया, बल्कि साथ-ही-साथ गीत का भी तत्व-निरूपण कर दिया। संभवतः इसी के फलस्वरूप आगे की संस्कृत परम्परा में 'मृच्छकटिकम्', 'रत्नावली', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' जैसे नाटकों में मनमोहक गीतों की सृष्टि हुई। यहाँ तक कि, 'मेघदूत' जैसी सशक्त एवं स्वतंत्र गीति रचनाओं का निर्माण जो आगामी सन्देश-काव्यों की आधार-सामग्री बनीं। जयदेव कृत 'गीत-गोविन्द' तक आते-आते लोकगीतों में राग के साथ ताल और लय का सम्यक त्रिकोण निर्मित हुआ जिसके परिणाम स्वरूप संगीत में न केवल प्राण का संचार हुआ, बल्कि वह नृत्य की विभिन्न मुद्राओं में आत्मविह्वल हो झूमने-नाचने लगा। वैदिक संस्कृत और पाली के बाद प्राकृत भाषा में हर्ष और उल्लास के हस्ताक्षर प्राप्त करके इस गीत-परम्परा ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में चतुर्दशपदी का रूप लेकर अपने शिल्प को नये आयाम प्रदान किये।

गीत-काव्य ने अपनी परम्परा में एक ओर व्यक्तिगत रागानुभव से सम्पृक्त शृंगार परक गीतों की सर्जना की, तो दूसरी तरफ प्राकृतिक रहस्यों से प्रभावित होकर उसे भक्ति के साथ-साथ आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता का पुट दिया । इसी परम्परा का अनुकरण करती हुई काव्य-धारा अपभ्रंश साहित्य के रास या रासक ग्रन्थों में कृष्ण-गोपी के शृंगार-विलास में आध्यात्मिक विचरण करने लगी तो दूसरी ओर बुद्ध-परम्परा की देन में वज्रयानी सिद्ध और वामपंथी योगियों ने लोक-भाषा का आधार ग्रहण कर उसे जन-सामान्य तक प्रेषित किया । गीतों के लिए लोकभाषा का ग्रहण यद्यपि नया नहीं था, थेरी गाथाओं द्वारा इनका सूत्रपात हो चुका था किन्तु इन योगियों ने 'भाषा बहता नीर' के माध्यम से गीत की प्रेषणीयता को इतना सहज और साध्य बना दिया कि देशी-विदेशी प्रभाव इस गीत-परम्परा में बड़ी सरलता से रचने-खपने लगे । अपभ्रंश की इस पद-परम्परा में अमीर खुसरो का पदार्पण हुआ जिन्होंने अपने पदों में संगीत की सृष्टि करके गीत-परम्परा को अत्यधिक समृद्ध किया एवं अरबी-फारसी शब्दों-बोलियों और रागों का आधार लेकर गीतों को नये रंग में ढाला । अमीर खुसरो ने ही सबसे पहले बरवा राग में लय-प्रणाली का सूत्रपात किया । लोक-भाषा के चलते मैथिली हिन्दी में विद्यापति का आगमन हुआ जिन्होंने कृष्ण-भक्ति का आधार लेकर ऐसे मधुर-मनोरम गीतों की सृष्टि की जो हिन्दी साहित्य में गीत-परम्परा की अमिट और अविस्मरणीय देन मानी जा सकती है । "कलागीतों की इस परम्परा से हटकर नाथों और सिद्धों की ज़मीन पर भक्तिकाल में कबीर अपनी खंजरी लेकर खड़े हुए और उन्होंने अपने आध्यात्मिक ताने-बाने में पदों को ऐसा 'लोकल टच' दिया कि, वह आज तक जन-मानस की पोथी से मिटाये नहीं मिटता । कबीर की यह लोकधर्मी गीत-परम्परा ही है जिसमें जाने-अनजाने अपने युग की लोक प्रचलित शैलियों - हिंडोला, आरती, बारहमासा, झूला, होली, मंगल, बधावै, सोहर आदि को न केवल साहित्यिक विरासत दी बल्कि घर-घर में उसके मंगल आचारों एवं आध्यात्मिक प्रभावों के माध्यम से गीत को जमा-बसा दिया । इस सन्त परम्परा में रैदास, दादू, धर्मदास, आदि भी आये किन्तु कबीर का कोई सानी नहीं था ।" भक्तिकाल में ही तुलसीदास ने अपने गीतों में जहाँ भक्त-हृदय की दीनता का भाव भरा, उच्छलन उंडेला वहीं सूरदास ने भाव-प्रणवता एवं तन्मयता प्रदान कर उसका परिष्कार किया । मीरा की मार्मिक भावुकता को पाकर यह गीत-परम्परा और जीवन्त हो उठी । इस प्रकार भक्तिकाल ने अपनी आत्मीयता एवं उज्ज्वलता से जितनी लोकगन्धों एवं विरासत से प्राप्त शास्त्रीय टेकों और धुनों से गीत-भंडार को समृद्ध किया था, रीति काल में आते-आते वह उतना ही कलुषित हो गया । सूर के उज्ज्वल और तेजोमय पवित्र शृंगार से रीतिकाल में भी अपवाद स्वरूप घनानन्द, बोधा, आलम और रसखान जैसे गीतकवियों का भी अविर्भाव हुआ जिन्होंनेअपने लौकिक अथवा अलौकिक प्रेमी को इस तन्मयता से प्रेम किया कि विरासत की उज्ज्वलता और तेजोमयता निष्प्राण नहीं हो पायी । इन कवियों ने अपने मुक्त छन्दों में अनुभूति की तीव्रता का संचार अत्यधिक तन्मयता और मार्मिकता से किया था ।

भारतेन्दु युग तक आते-आते गीत-काव्य में नवोन्मेषहुआ । मुगल साम्राज्य का पतन और ईस्ट इन्डिया कम्पनी का उदय, एक संस्कृति के बाद दूसरी संस्कृति के आगमन का संकेत था । यही नहीं, एक गुलामी के बाद दूसरी गुलामी की छटपटाहट भी कलाकार को परेशान करने लगी थी, किन्तु यह परेशानी आन्दोलन का पर्याय कम तथा विवशता एवं बेचैनी की सार्थकता को अधिक प्रकट कर रही

थी । सम्भवतः इसी कारण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे समृद्ध कलाकार में एक ओर सूर, मीरा और रसखान का प्राचीन स्वर था तो दूसरी ओर नयी व्यवस्था की गुलामी के आते राष्ट्रीय चेतना की नवीन भूख थी, जिसके चलते भारतेन्दुयुग और फिर द्विवेदी युग के साहित्य ने समय की महत्वपूर्ण मांग के अनुरूप राष्ट्रीयता को इस कदर स्थापित करने का प्रयत्न किया कि, कविता में रसज्ञता कम तथा प्रचार और उपदेश अधिक हो गया - ऐसे में गीत पर खरोंच आनी स्वाभाविक थी । इसी दौरान कवीन्द्र रवीन्द्र का अविर्भाव हुआ और उनकी गीतांजलि के प्रभावस्वरूप द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता को न केवल ठेस लगी, बल्कि साहित्य में विद्रोह के स्वर फूटने लगे । इसी के साथ छायावाद का उदय हुआ । "यद्यपि छायावादी काव्य-धारा में प्रसाद और निराला ने कई महत्वपूर्ण एवं जीवन्त राष्ट्रीय गीत दिये लेकिन मूलतः वे अपवाद ही कहे जायेंगे । छायावादी कवियों की अन्तःदृष्टि समग्रतः व्यक्तिवादी, रोमानी एवं प्रकृति-प्रेरित ही कही जाएगी । उन्होने भले ही द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता की प्राचीरों को तोड़ा हो किन्तु उनकी कविता प्रकृति-चित्रण की आड़ में व्यक्तिवादी रोमानी चेष्टाओं के भीतर इस कदर घुस गई थी कि उनमें नन्दनवन में गीत-विहगों के कल-कूजन का स्वर भले ही सुनायी देता रहा हो लेकिन लोक-मंगल का भाव अपवाद रूप में अस्पष्ट-सा ही रहा है ।" छायावाद की सर्वोपरि विशेषता है, उसका गीत-काव्य । यह निर्विवाद है कि, हिन्दी काव्य-इतिहास में छन्दों की बड़ी विविधता, नवीनता, ध्वन्यानुरूपता अन्यत्र उपलब्ध नहीं है । यहां यह कहना उचित होगा कि, हिन्दी कविता में जो पुनीत गीत-धारा भक्तिकाल में तीव्रता से प्रवाहमान होकर रीतिकाल के मरूस्थल में क्षीण हो चुकी थी, वही छायावाद के उदय के साथ ही नवीन वेग से लहरा उठी । छायावादी कवियों ने भाव-कल्पना, सूक्ष्म सौन्दर्य, विस्मय भावना, नारी के प्रति उदार एवं नवीन दृष्टिकोण जैसे भावगत उपकरणों से अपने काव्य को विभूषित किया और इसी के चलते कलात्मक उपकरणों, व्याकरण की जड़ और निर्जीव शृंखला को तोड़ना, मौलिक उद्‌भावना, विशेषण विपर्यय, मानवी मानवीकरण, पद-लालित्य, नवीन अलंकार, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता, स्वच्छन्द एवं नवीन छन्द-योजना, कोमलता से पूर्ण मधुर भाषा आदि की श्रीवृद्धि की । तीव्रानुभूति, संगीतात्मकता, भावों की एकतानता, संक्षिप्तता एवं सरसता आदि गुण छायावादी गीतों में अत्यन्त सहजता से उपलब्ध हो जाते हैं । प्रसाद, निराला, पन्त तथा महादेवी वर्मा के गीतों में ये तत्व हमें देखने को मिल जाते हैं । इसी प्रकार रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा 'हृदयेश', उदयशंकर भट्ट आदि के गीतों में भी छायावाद की ये विविधताएं देखी जा सकती हैं।

साहित्य में कोई भी आन्दोलन अथवा प्रवृत्ति यकायक समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि बीच में एक ऐसा अन्तराल आता है, जहाँ पुराने के प्रति मोह और नये को ग्रहण करने की विवशता एक कशमकश के रूप में सामने आती है । सन् १९३६ ई. में यद्यपि प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी और छायावाद के विपरीत साहित्य में प्रगतिवादी आन्दोलन का उदय हो गया था किन्तु इसके बीच का समय कुछ ऐसा रहा जिसमें गीत-काव्य में मिली-जुली भावोर्मियाँ एवं विचार-सरणियाँ देखने को मिलीं । ऐसे गीत एक तरफ छायावादी रंग लिये हुए थे, तो दूसरी ओर उनमें छायावादोत्तर यथार्थवादी चेतना के अंकुर फूटते भी नज़र आये थे । ऐसे गीतकारों में जानकी वल्लभ शास्त्री, गोपालसिंह नेपाली, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, विद्यावती कोकिल, तारा पाण्डेय, शकुन्तला सिरोठिया तथा नरेन्द्र के नाम उल्लेखनीय हैं । एक निश्चित विश्वदृष्टि एवं काव्यशिल्प के अभाव में कमोबेश ये गीतकार केवल इतिहास

का विषय बनकर रह गये । इन कवियों ने प्रणय को लरजता हुआ स्वर भले न दिया हो किन्तु उसे छायावादियों की भाँति गोपनीय, रहस्यवादी और आध्यात्मिक बाना नहीं पहनाया । इन्होने न केवल प्रणय-प्रसंग में, बल्कि प्रेम के अंगोपांग - दुःख, पीड़ा, वेदना, संत्रास, अवसाद आदि को भी व्यापक आयाम दिये । इस तरह इन कवियों में प्रेम-भावना का स्वर अधिक बुलन्द होते हुए भी सामाजिक विसंगति, दार्शनिक भूमि और पैदा यदा-कदा राजनीतिक दृष्टि भी दिखाई पड़ जाती है । इनके गीतों में संगीतात्मकता भी अपनी शास्त्रीय जड़ता को छोड़कर लोक-संगीत के पर्याप्त निकट आयी । अतएव इस खेमे में गीतकारों की यह कम उपलब्धि नहीं ।

राष्ट्रीयता के प्रति आस्था किसी भी देश के नागरिक के लिए जहां एक अनिवार्यता है, वहाँ धर्म भी है । कवि या कलाकार को तो इसका व्याख्याता बनना ही पड़ता है । साहित्य में आधुनिक काल में भारतेन्दु युग से लेकर छायावादी युग तक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक गीत-धारा निरन्तर प्रवाहमान रही। माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिंह दिनकर, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, हरिकृष्ण प्रेमी तथा श्यामनारायण पाण्डेय जैसे गीतकारों में इस गीत-धारा में उल्लेखनीय योगदान दिया है । हालांकि इनकी रचनाओं के विषय तो अनेक रहे हैं किन्तु इनकी मूल प्रेरणा का स्रोत राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना ही है ।

छायावादोत्तर काल में डॉ. हरिवंश राय 'बच्चन' के अविर्भाव के साथ ही व्यक्तिवादी काव्यधारा ने जन्म लिया, जिसके प्रमुख रचनाकार बच्चन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा, भगवती चरण वर्मा, आरसी प्रसाद सिंह आदि हैं । यद्यपि यह गीत-धारा अधिक समय तक नहीं चल सकी, किन्तु थोड़े ही समय में जो विशिष्टता इसने प्राप्त की, वही इसकी उपलब्धि है । वास्तव में छायावाद के मूल उद्गम से आविर्भूत इसी धारा ने प्रगतिवाद के लिए पथ प्रशस्त किया । निःसन्देह, शैली और शिल्प की सादगी को देखते हुए ये गीतकार जनमानस को शीघ्र प्रभावित करने में समर्थ हुए, किन्तु शैली और शिल्प की सादगी ही किसी काव्य-धारा को संजीवनी शक्ति नहीं प्रदान करती, उसने विषयवस्तु की अर्थवत्ता ही उसकी वास्तविक प्राण-चेतना है । अतः यह राष्ट्रवादी गीतधारा के रचनाकारों की बढ़ती लोकप्रियता भी स्थायित्व नहीं ग्रहण कर सकी, और धीरे-धीरे उसकी प्राचीरों में दरार पड़ने लगी ।

ऐसे में सन १९३६ ई. के आस-पास उथल-पुथल के नाम पर जो काव्य-रचना की प्रक्रिया आरम्भ हुई, उसे प्रगतिवादी काव्य धारा के नाम से नवाज़ा गया । इसके प्रतिनिधि गीतकार- नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि हैं। १९४० के आस-पास यह गीत-धारा पर्याप्त समृद्ध हुई किन्तु शीघ्र ही १९५० तक आते-आते इसकी शाख गिरने लगी । प्रगतिवाद के साथ-ही-साथ गीतों में प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ भी पनप चुकी थीं । प्रगतिवादी प्रवृत्ति अधिक अनुकूल परिस्थितियों के कारण जन-कोलाहल में शीघ्र व्याप्त हो गई, लेकिन प्रयोगवादी प्रवृत्ति को उभरने में कुछ समय लगा । प्रयोगवाद में आधुनिक जीवन-दृष्टि, पश्चिमी प्रभाव और राष्ट्रीय परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं का समावेश हुआ । इस गीत-धारा के प्रतिनिधि कवियों में- अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह आदि हैं । तार-सप्तक, दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक के समस्त रचनाकारों में से गिरिजाकुमार माथुर और केदारनाथ सिंह ने ही गीत को कविता की भाँति महत्वपूर्ण

माना है, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में गीतविधा के मर्म को समझा है और उसी के अनुरूप चिन्तन भी किया है । यों तो प्रयोगवादी, प्रयोगशील और नये कवियों ने अनेक श्रेष्ठ गीतों की रचना की है । इस गीतधारा की महत्वपूर्ण सीमा यह रही कि, यह काव्य-धारा प्रयोग-दृष्टि एवं शिल्पिक उपकरणों के बीच पारस्परिकता का निर्वाह नहीं कर पायी । इन्होने रीति-कवियों की तरह शिल्प-प्रयोग तो क्रान्तिकारी धरातल पर किये, किन्तु उसके अनुपात में युगदृष्टि धुंधली हो गई और ये रचनाकार दूसरी पंक्ति के हस्ताक्षर बनकर रह गये । परिणामतः प्रयोगवादी रचनाकार जन-जीवन को कुछ विशेष प्रदान नहीं कर सके, जो उनके लिये हो, अथवा उनका हो ।

सन् १९५० ई. के बाद गणतंत्रीय व्यवस्था ने रचनाकार को व्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार दे दिया, इसलिए वह जमीन के अधिक नजदीक आ गया था और नये अन्दाज से उसकी प्रत्येक धड़कने एवं समस्या को शाब्दित करने लगा था । जाहिर है, ऐसे में गीत का परम्परित विधान भी टूटना निश्चित था । ऐसी स्थिति में गीत व्यक्तिगत रागात्मक क्षणों का उच्छ्वास नहीं रह गया बल्कि जन-जीवन से जुड़कर उसमें पर्याप्त बौद्धिकता आई, लोकधुनों का प्रवेश हुआ, लोकजीवन की धड़कन आई और इस तरह उसका विषय अपनी सीमित परिधि को तोड़कर व्यापक स्तर पर प्रसारित होने लगा । इस चेतना की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम निराला जी के गीतों में देखी गई थी । यह नवीन गीतात्मक चेतना अपने वस्तु-शिल्प एवं दर्शन की दृष्टि से अपनी परम्परा से पर्याप्त भिन्न थी । फिर भी बौद्धिक दुरूहता के धुंध से निकलने में इसे समय लगा और १९५० ई. तक आते-आते इस चेतना को मुखर होने का अवसर मिल पाया ।

जहाँ तक हिन्दी काव्य में गीत की उपस्थिति का प्रश्न है - यह एक निर्विवाद सत्य है कि गीत का अविर्भाव मनुष्य के साथ ही हुआ है । मनुष्य ने गुनगुनाया, इसलिए यह चैतन्य रहा और गीत उसके अधरों पर आकर प्रतिष्ठित हुआ । मध्यकाल में रागात्मकता के साथ हमें वह संगीत भी मिला जिसने जीवन और उसके हर्ष-आनन्द को और गतिशीलता प्रदान की । छन्द-विधान की दृष्टि से भी प्राचीन पदों का अपना वैशिष्ट्य रहा है । गायक-कलाकारों ने गाकर इनकी उपादेयता को सिद्ध किया है । इन पदों से ही गीति-काव्य को सम्बल भी मिला । इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि गीति-काव्य या गीत का जन्म ही लोकगीतों से हुआ होगा । यदि न भी हुआ हो, तब भी लय, स्वर और व्यंजना के लिहाज से लोकगीतों ने ही गीत को अत्यधिक रससिक्त और ज्ञान के साथ श्रव्य बनाया । हिन्दी के कई रचनाकारों ने लोकगीतों की धुनों पर गीतों की रचना की । अतः हिन्दी गीतों का माधुर्य लोकगीतों की ही देन कहा जाएगा ।

नवगीत का वैशिष्ट्य सर्वोपरि यही है कि एक ओर तो यह भारतीय अन्तेवासियों के जीवन-संघर्ष को काव्यांकित करता है, ग्राम्य एवं देहात की विरल संस्कृतियों का उद्घाटन करता है । आरण्यक वानस्पतिक छवियों को उघारता हुआ खेतों-खलिहानों में झांकता है । ग्राम-वधुओं के अवगुण्ठन खोलता है । श्रमजीवियों की झुग्गी-झोपड़ियों में जाकर बैठता है । पगडंडियों से चलकर पनघट तक पहुंचता है । नदी, नालों, पोखर, ताल-तलैयों, बांध-सरोवर में स्नान भी करता है और घायल पावों से चिलचिलाती धूप में पिघलते हुए डामर की सड़क पर अलक्ष्य यात्राएं भी करता है । तो दूसरी ओर अभिजात

वर्ग की शालीनता उसकी शिष्टता के अन्तर्गत व्याप्त रोजमर्रा के अन्तर्कलह आत्मसंकुचन, ईर्ष्याद्वेष, षड्यंत्र, भ्रष्टाचार, राजनीतिक दुष्चक्रों इत्यादि विसंगतियों का अवलोकन करता हुआ वैश्विक परिवर्तन से भी जुड़ता हुआ दिखायी देता है । वह रूढ़ियों की काई हटाकर ज़मीन के ऊबड़-खाबड़ पत्थर से जोड़ता है। विश्व-साहित्य की परिवर्तित वैचारिकी से साक्षात्कार करता हुआ नयात्मक एवम् छान्दसिक धरातल पर अन्तःरस की सृष्टि करता हुआ व्यक्ति-संवेदनाओं के निगूढ़ अन्ध तहखानों तक चहलकदमी करता हुआ नजर आता है ।

नवगीत-काव्य से पूर्व आधुनिक हिन्दी-साहित्य में जो विविध प्रवृत्तियों वाली काव्य-धाराएं प्रवाहित हो चुकी हैं, उनमें प्रमुख है - छायावादी काव्य-धारा, छायावादोत्तर व्यक्तिवादी काव्य-धारा, प्रगतिवादी काव्य-धारा, प्रयोगवादी काव्य-धारा एवं नयी कवितावादी काव्य-धारा । यह सच है कि, ये काव्य-धाराएं युग-विशेष में अपनी-अपनी महत् भूमिका का परिचय देती रही हैं, पर इनमें से कोई भी प्रवृत्ति ऐसी नहीं है जो एक बार काव्य-क्षितिज पर अवतरित होकर पूर्णतः तिरोहित हो गई हो । इस प्रक्रियाके मध्य हिन्दी-कविता अपने नये व्यक्तित्व को यथोचित आकार देने के लिए प्रयत्नशील रही है, जिसके लिए उसने इन काव्य-धाराओं के अतिरेकी विभाजन को अस्वीकार करते हुए युग-सापेक्ष मूल्यो के ग्रहण एवं अप्रासंगिक तत्वों के त्याग की बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है । 'नवगीत' हिन्दी काव्य-साहित्य की ऐसी ही एक धारा है जो निश्चय ही पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं से अलग व्यक्तित्व रखता है ।

छायावादी गीत-काव्य से नवगीत भिन्न है क्योंकि, इसमें व्यक्तिगत अथवा निजी सुख-दुःख की कथा नहीं है, यह मानवीय कल्पनाओं का काव्य नहीं है, यह अतीतजीवी काव्य नहीं है, यथार्थ से दूर नहीं है, या यह कि जन-साधारण से अपरिचित स्वप्न-लोक की भाषा-शैली को अपनाकर नहीं चला । किन्तु नवगीत छायावादी काव्य की धनात्मक परम्परा का तिरस्कार नहीं करता क्योंकि इसमें भी प्रकृति को कथ्य एवम् शिल्प के उपादानों के रूप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । इसने रागात्मकता की उपेक्षा नहीं की है, क्योंकि शिल्प के औदात्य की रक्षा नवगीतकार को भी वरेण्य प्रतीत हुई है ।

नवगीत के लिए प्रेमी-प्रेमिका की विरह-मिलन स्थितियों का ही एकान्त महत्व नहीं है । वह समाज-विरोधी अहम्मन्यता से ग्रस्त नहीं है और नहीं उसका अनुभव-संसार सीमित है । उसने सरलता के नाम पर अनुदात्त सपाटबयानी को भी नहीं अपनाया है और न ही उसने सस्ती लोकप्रियता के लिए मंचीय चमत्कार-प्रियता को स्वीकार किया है । इस कारण यह नवगीत छायावाददोत्तर व्यक्तिवादी गीत-धारा से भिन्न है । किन्तु छायावादी गीत-धारा और छायावादोत्तर गीत-धारा की भांति नवगीत-काव्य भी छन्द को कविता का सामर्थ्य मानता है, सीमा नहीं ।

नवगीत प्रगतिवादी गीत-धारा से भी इसलिए भिन्न है, क्योंकि उसने केवल सिद्धान्तों का ढोना श्लाघनीय नहीं माना और उसने अनुभव निरपेक्ष अधिवक्ता होना बेईमानी लगा, उसने स्वीकार किया कि भाषा का भी अपना शील होता है । उसने कविता के अन्तर्निहित शिल्प-सौन्दर्य को उपेक्षणीय नहीं माना किन्तु नवगीत की मूल चेतना विचारधारा के स्तर पर प्रगतिवाद से पूर्णतः पृथक नहीं है क्योंकि व्यापक जन-हित, शोषण का विरोध, सामाजिक न्याय, समाजवादी व्यवस्था एवं समानाधिकार

नवगीत-कवि के भी प्रमुख कथ्य हैं ।

नवगीत, प्रयोगवादी गीत-काव्य एवं नयी कविता से भी भिन्न है क्योंकि वह संकीर्ण व्यक्तिवाद का अनुगायक नहीं है और न ही वह केवल कुत्सित, भदेस, क्षुद्र, निकृष्ट एवं मूल्यहीन को ही यथार्थ का पर्याय मानता है । अनास्था एवं कुण्ठा ही जीवन के सर्वोपरि सन्दर्भ नहीं है । क्षणजीवी अस्तित्ववादी दृष्टि ही उसके लिएए आधुनिकता नहीं है । वह कोरे गद्य को कविता नहीं कहता । वह रागात्मकता को पिछड़ेपन का प्रतीक नहीं मानता । नवगीत भी नयी कविता की भांति आधुनिकता को स्वीकार करता है किन्तु यह आधुनिकता राष्ट्रीय सन्दर्भों से निरपेक्ष नहीं है । नवगीत भी बिम्ब को एक शिल्पगत मूल्य स्वीकार करता है, परन्तु निरर्थक शब्द-जाल उसका अभिप्रेत नहीं है । नवगीत का अभिव्यंजनाशिल्प इस रूप में व्यक्तिनिष्ठ एव दुरूह नहीं कि बौद्धिक व्यसन का पर्याय बन जाये ।

नवगीत विधा का इतिहास यद्यपि 'नयी कविता' के समानान्तर ही विकसित होता है किन्तु नयी कविता का जितना मूल्यांकन और विश्लेषण हुआ है उसकी अपेक्षा नवगीत को यह श्रेय कम ही मिल सका । नयी कविता समकालीन काव्य के दायरे में एक केन्द्रीय विधा के रूप में अवतरित हुई और नवगीत एक अनुषंगिक धारा की भांति विकसित होता रहा । नवगीत के साथ समस्या यह रही कि न तो उसे समय पर सक्षम समीक्षक उपलब्ध हुए और न ही डॉ. शम्भुनाथ सिंह के अतिरिक्त अन्य किसी नवगीतकार ने आगे बढ़कर इस विधा की पैरवी की । यद्यपि पत्र-पत्रिकाओं से 'नवगीत-आन्दोलन' को प्रोत्साहन तो मिलता रहा, किन्तु नियमित और निश्चित स्वरूप से बंधे न होने के कारण इस विधा का इतिहास सुनिश्चित नहीं किया जा सका है । नवगीत की मर्यादाओं को उरेहते हुए जो बिन्दु यदा-कदा सामने आये हैं वे उसकी तथ्यगत संकीर्णता को लेकर हैं । जैसे बार-बार आंगन, तुलसी चौरा, नीम, बबूल, बाबा, दादी का स्मृति-संयोजन आदि को इसकी सीमा निर्दिष्ट किया जाता है । गाँव के प्रति एक मिथ्या आसक्ति-बोध जो कि प्रायः प्रत्येक नवगीतकार में एक विशेष मुद्रा का रूप धारण कर प्रस्तुत होता है, इसकी दूसरी सीमा रेखा है । द्वन्द्वग्रस्त मन और पीड़ा-बोध नवगीतकारों में एक-सा दिखाई देता है जो उसे पश्चाताप की मनःस्थिति से संलग्न करती है ।

साहित्य में काव्य-रूपों के सैद्धान्तिक मूल्यांकन का प्रश्न अपने आप में निरपेक्ष नहीं है । वास्तविकता यह है कि पहले काव्य की कोई विधा अपना व्यावहारिक आयाम लेती है और तदुपरान्त ही विद्वान या समीक्षक उसकी सिद्धान्त-रेखाओं का निर्धारण करते हैं । प्रागैतिहास तथा इतिहास-परम्परा में गीत ने स्वयं को जितना बनाया-मिटाया और विविध रूपों को अपनाया उसी के अनुरूप गीत की सिद्धान्त-भित्तियाँ भी बनती बिगड़ती रही हैं । छायावादोत्तर गीत-काव्य का सिद्धान्तपक्ष अपनी इसी इतिहास-परम्परा की बुनियाद पर निर्मित हुआ है, इसी कारण गीत-परिभाषा में उसके कथ्य अथवा शैली में निश्छलता, सहजता, आत्मानुभव की तीव्रता, मार्मिकता, संवेद्यता, स्वच्छन्दता, काल्पनिकता, प्रभविष्णुता, स्वाभाविकता, तरलता, चित्रमयता, संगीतात्मकता एवम् भाषा की सुकुमारता वर्तमान गीत-दृष्टि को देखते हुए अपर्याप्त नज़र आने लगी और बदलते हुए स्वर-तेवर तथा परिवेश में, कथ्य और शिल्प में इन सभी विशिष्टताओं के साथ-साथ गीत में बौद्धिक चिन्तन, युगीन परिवेश का यथार्थ, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता तथा विषय के अनुरूप शब्द, भाषा, लय, संगीत तथा छन्द में भी अभिनव प्रयोग नजर आने लगे

और इस तरहं छायावादोत्तर गीत-काव्य तक आते-आते गीत केवल कवि की निजी अनुभूति न रहकर अन्य काव्य-विधाओं की तरह युग-सन्दर्भ को स्पन्दित करने लगा । आद्योपान्त गीत ने एक लम्बी यात्रा की है । गीत ने अपनी परम्परा में भले ही अपने वस्तु-शिल्प को कितना भी क्यों न परिवर्तित किया हो, संगीत की लय से वह आज तक नहीं टूटा । हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि, गीत का संगीत से अटूट रिश्ता है । जिस दिन संगीत विहीन गीत-रचना की बात कही जायेगी, कदाचित् उसी दिन गीत सदा के लिए तिरोहित हो जायेगा ।

किसी भी काव्य-प्रवृत्ति के स्वरूप-निर्धारण में सामयिक साहित्येतर परिवेश की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, किन्तु साहित्य के इतिहास का अध्ययन यह अवश्य प्रमाणित करता है कि किसी भी नयी प्रवृत्ति का उद्‌गम पूर्ववर्ती काव्य में किसी विशिष्ट अपेक्षा की पूर्ति न होने के कारण ही होता है । नवगीत के माध्यम से हिन्दी काव्य-साहित्य में जिन प्रवृत्तियों का आविर्भाव हुआ है, वे युगीन आवश्यकता के ही परिणाम हैं । नवगीत समष्टिमूलक चेतना का वाहक है, आधुनिक चेतना-सम्पन्न है और रागात्मकता को स्वीकार करता है । वह जातीय संस्कारों से हीन कदापि नहीं है और न ही छन्द एवं लय को छोड़कर चलता है । वह रूढ़ियों का विरोधी एवं स्वस्थ परंपरा का पोषक है । निश्चय ही समग्र रूप से ये विशेषताएं पिछले चालीस वर्षों के हिन्दी काव्य की किसी एक विशेष धारा में उपलब्ध नहीं थीं । सम्पूर्ण साहित्य के अध्ययन से नवगीत अपनी जिन विशिष्टताओं के कारण अलग पहचान के साथ प्रस्तुत हुआ, वे हैं - आधुनिकतापरक दृष्टि, यथार्थ बोध, समष्टिगत उन्मुखता, वैयक्तिकता एवं वस्तुपरकता का समन्वय, समृद्ध सांस्कृतिक चेतना, प्रकृति-प्रेम एवं सौन्दर्य के प्रति नवीन दृष्टिकोण, जातीय अस्मिता के प्रति सजगता का भाव, शोषण एवं अन्याय जन्य स्थितियों के प्रति आक्रोश, व्यंग्य एवं करूणा की अभिव्यक्ति, मौलिकता सम्पन्न अप्रस्तुत विधान, बिम्ब प्रधान अभिव्यंजना-शिल्प, अभिनव गीत शिल्प लयात्मकता और संक्षिप्तता । इन प्रवृत्तियों में, कई ऐसी भी हो सकती हैं अन्य काव्य-धाराओं में भी उपलब्ध हों, किन्तु नवगीत-काव्य में इनकी जो संयोजना है, वह अन्य काव्य-धाराओं से सर्वथा भिन्न प्रकृति की है । इन समस्त विशिष्टताओं को समेटे हुए 'नवगीत' इसी कारण अन्य काव्य-धाराओं से अलग पहचान स्थापित करता है । अतएव यह दुराग्रह निरर्थक है कि, नवगीत में अपनी पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं की ही प्रवृत्तियों की पुनरावृत्ति हुई है, इसलिए इसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है ।

नवगीतकार की दृढ़ मान्यता है कि, साहित्यकार स्थितियों का तटस्थ द्रष्टा नहीं है, वह किसी विचारधारा का अनुवादक भी नहीं है, बल्कि जब वह परिवेश की धूल और मिट्टी में लथपथ होकर भावाभिव्यक्ति करता है तो उसके माध्यम से व्यक्ति एवं समाज की अविभाजित संवेदना मुखर होती है । इस अभिव्यक्ति का आवेग एक विद्युत-प्रवाह की भांति हमें झंकृत करता है । यह झनझनाहट हमें वर्तमान के प्रति सावधान भी करती है और समाज को एक नयी दिशा भी प्रदान करती है । नवगीत ने ऐसा ही किया है ।

'नवगीत' परम्परा-विद्रोही होने के बावजूद एक ऐसी विधा है जिसमें एक ओर भक्तिकालीन पद-शैली है, तो दूसरी तरफ 'रीतिकालीन बोध' । कहीं नियतिवादी दर्शन का संकेत है, तो कहीं 'औपनिषदिक

दर्शन' की गहराई और कभी 'सामाजिक यथार्थवाद' को मुखरित करने वाली भाव-भंगिमा । निःसन्देह, नयी कविता के समानान्तर साहित्य जगत में अवतरित होने वाली यह गीत-विधा 'युग-बोध' की अभिव्यक्ति के लिए उन्हीं उपकरणों को प्रयोग में लाती है जो नयी कविता ने अपनाई है । ऐसी अवस्था में प्रतीक, बिम्ब, शब्द और छन्द सभी उपकरणों में से गीत-प्रकृति की रक्षा करनी होगी ।

आज जबकि नवगीत अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा के साथ एक विकसित विधा के रूप में स्थापित हो चुका है, तब कुछ ऐसे भी प्रयत्न जारी हैं जो नवगीत को विकास-यात्रा में अपने आपको आगे की पंक्ति में जोड़ लेने को उत्सुक हैं । जिस समय नयी कविता का आन्दोलन चल रहा था, और गीत-नवगीत की प्रत्यक्ष रूप से उपेक्षा ही नहीं की जा रही थी, उसे असाहित्यिक विधा भी घोषित किया जा रहा था तब तब जो लोग नयी कविता से जुड़े हुए थे, और गीत के सम्बन्ध में चुप्पी साध रक्खे थे, उनके कतिपय गीत उन्हें नवगीत का प्रवर्तक नहीं बना सकते । नवगीत के प्रवर्तक वही लोग होंगे जो मूलतः नवगीत को समर्पित रहे, उसे समय के अनुकूल वस्तुशिल्प से तराशते रहे तथा नयी कविता के प्रहारों का प्रत्युत्तर देते हुए नवगीत के पक्ष में अपने विचार, विवेचन और विश्लेषण प्रस्तुत करते रहे ।

छायावादी गीतों की तुलना में अधिक सहज और वास्तव, उत्तर छायावादी गीतों की तुलना में अधिक सूक्ष्म लोकोन्मुख, चालू रोमानी गीतों की तुलना में अधिक साहित्यिक, संस्कारमुक्त और ईमानदार यह नवगीत अब स्वयं को हिन्दी काव्य में प्रतिष्ठित कर चुका है । नयी कविता के किसी साम्प्रदायिक रूप में जकड़े बिना उसे उसका पूरक अंश मानना ही उचित है । आधुनिक मन की सर्जक, प्रतिभा वाली अपनी अनुभूतियों को अधिक भावप्रवण क्षणों में नवगीतों में प्रविष्ट कराती है और अपेक्षतया सम्हले, तटस्थ क्षणों में अन्य काव्य-रूपों में । यह सत्य है कि, मनुष्य के मन में गीत के लिए ललक संदैव बनी रहेगी, क्योंकि अन्य काव्य-रूपों की अपेक्षा गीत अधिक भावभीने और लालायित होते हैं । एवं व्यक्तिगत सुख-दुःख की घड़ियों में अनायास ही फूट पड़ते हैं । अपना या अपनाया हुआ गीत गुनगुना उठना ऐसे क्षणों में मानव-मन की विवशता है और इस विवशता में ही मानवता सुरक्षित है । गीत का भावपरकता से स्वाभाविक सम्बन्ध है । कवि पर गीतिमत्ता का दबाव जितना अधिक होता है, उतना ही उसका जीवनानुभव, चिन्तन और लक्ष्य आवेग से अच्छन्न हो जाता है। वह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि नहीं उपजती जो प्रेक्षण, अनुभूति और कल्पना की निस्संग शल्य-क्रिया करती है । भावबोध के साथ मूल्य-बोध को दोहरी चेतना, जो कारण की जटिलता का अन्वेषण करती है, गीत की अभिवृत्ति नहीं है । इसीलिए गीतकार प्रायः उद्वेग, आकर्षण लालसा, मनस्ताप, करुणा आदि की काल्पनिक अनुभूति से ग्रस्त रहता है । गीत के रूपतंत्र से मुक्त हुए बिना, किसी कवि के लिए काल्पनिक अनुभूतियों के दबाव से मुक्त होना प्रायः सम्भव नहीं हो पाता । जहां तक छायावाद में गीतों की महत्ता का प्रश्न है, यह ध्यातव्य है कि, छायावादी कविता मूलतः राग और रहस्य की कविता थी। उसके लिए गीत स्वाभाविक विधा थी ।

नयी कविता में समसामयिक परिवर्तित आयाम साठोत्तर काल में स्थापित हुए विचारोत्तेजना और क्रान्ति के पक्षमें उद्वेलित स्वर कविता में सन् १९५६ के आसपास से ही प्रारम्भ हो गये थे । इस

सन्दर्भ में 'लहर' और 'बासन्ती' मासिक पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अर्जित की । लहर में वीरेन्द्र मिश्र ने अनेक वक्तव्य देकर नवगीत के बदलते हुए परिवेश पर विस्तृत चर्चा की । वासन्ती में सन १९६०-६२ में एक लेखमाला प्रारम्भ की गई जिसमें डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, वीरेन्द्र मिश्र, डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. केदार नाथ सिंह, डॉ. शिवप्रसाद सिंह आदि के नवगीत सम्बन्धी विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित हुए। इससे पहले ही राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने 'गीतांगिनी' का सम्पादन किया और भूमिका में यह स्वीकार किया कि नयी अनुभूतियों की प्रक्रिया में संचयित मार्मिक समग्रता का आत्मीयतापूर्ण स्वीकार इस नवगीत में होगा जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग व नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा । राजेन्द्र प्रसाद सिंह के इस कथ्य ने नवगीत में पुनः छायावादी सोच को आरोपितकरने का यत्न किया था किन्तु इस सोच का पक्ष बहुत दूर तक चल नहीं पाया । इनके तुरन्त बाद ही 'कविता ६४' नाम से डॉ. ओम प्रभाकर ने नवगीत संकलित करते हुए इसकी विचार-पीठिका को समर्थ रूप में व्यक्त किया। इस संकलन में डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. रमेश कुन्तल 'मेघ', डॉ. रवीन्द्र भ्रमर आदि के विश्लेषणात्मक लेख भी थे । सन् ६० से ७० तक के छठे दशक में गोपीकृष्ण गोपेश, वीर सक्सेना, नईम, शलभ श्रीराम सिंह, नरेश सक्सेना, ओम प्रभाकर आदि कवियों के वक्तव्य भी वातायन, लहर, वासन्ती, ज्योत्स्ना, कल्पना, माध्यम, उत्कर्ष, ज्ञानोदय, साप्ताहिक हिन्दुस्तान व धर्मयुग आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे ।

छठें दशक का ही नवगीत-संकलन 'पांच जोड़ बांसुरी' पर्याप्त चर्चित रहा जिसकी भूमिकरा में चन्द्रदेव सिंह ने नवगीत के सन्दर्भ में स्थापित मान्यताओं को लेकर गम्भीर चिन्तन व्यक्त किया । इस संकलन में भी डॉ. केदारनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, हरिवंशराय विद्यानिवास मिश्र एवं भगवत शरण उपाध्याय के तथ्यपरक गम्भीर लेख सम्पादित किये गये थे जो नवगीत को शास्त्रीय रूप में व्याख्यायित करते थे । नवगीत के लिए आठवाँ दशक पर्याप्त चर्चा का विषय रहा । इस दशक में बड़े ही सार्थक संवाद स्थापित हुए । इसी समय अवधी में नवगीत के अनेक विशेषांको को लेकर अनेक पत्रिकाओं के समृद्ध प्रकाशन भी हुए, जिनमें 'आईना, नये-पुराने, कात्यायनी, शैवाल, त्रिविधा, ऋतुचक्र, शोध स्वर, परिवेश, अन्तराल, अनन्या, वातायन, सांध्यमित्रा, ऋचा आदि पत्रिकाओं की भूमिका विशेष उल्लेखनीय रही । इन विशषांकों में प्रतिनिधि नवगीत-कवियों के अतिरिक्त अनेक विद्वानों एवं मनीषियों ने भी नवगीत के सन्दर्भ में अपनी दो टूक बातें गम्भीर वैचारिक सोच के साथ व्यक्त की । इन पत्रिकाओं में वीरेन्द्र मिश्र, ओम प्रभाकर, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', प्रेमशंकर, आदि के लेख विशेष चर्चा के केन्द्र बने । नवगीत का नवां दशक हिन्दी काव्य-रचना के सन्दर्भ में विशेष चर्चा का विषय रहा। इस दशक के प्रारम्भिक वर्षो में राजेन्द्र प्रसाद सिंह, रामनरेश पाठक, विश्वनाथ प्रसाद आदि ने धर्मयुग में अपने विस्तृत लेख एवम् वक्तव्य प्रस्तुत किये। देवी प्रसाद कुंअर द्वारा आयोजित परिचर्चा में उमाकान्त मालवीय, माहेश्वर तिवारी, डॉ. शम्भुनाथ सिंह, डॉ. शान्ति सुमन, रमेश रंजक, ओम प्रभाकर, गुलाब सिंह, अनूप अशेष, उमाशंकर तिवारी, कुंअर बेचैन, सोम ठाकुर, रवीन्द्र भ्रमर आदि ने भाग लेकर नवगीत के पृथक एवम् स्वतन्त्र अस्तित्व पर अपने मत स्थापित किये । १९८० के बाद प्रमुख पत्रिकाओं में उत्तरा, आईना, ऋतुचक्र एवं नवगीत के विशेषांकों का प्रदान पर्याप्त महत्वपूर्ण रहा । डॉ. शिव शंकर शर्मा द्वारा सम्पादित नवगीत के विशेषांक में माहेश्वर तिवारी का वक्तव्य तथा देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का

लेख विशेष चर्चा का विषय बना ।

जुलाई १९८३ में नववीत दशक-२ का विमोचन भोपाल में आयोजित किया गया जिसमें नवगीत के छन्द-प्रसंग को लेकर विचार गोष्ठी आयोजित हुई जिसमें कविता की छान्दसिक निबद्धता को महत्ता दी गई । इसी के प्रभाव से संलग्न होकर भोपाल में 'कविता-कुम्भ' आयोजित हुआ जिसमें इस नवगीत के विषय पर तूर्य का निनाद सुनायी पड़ा । लखनऊ में सम्पन्न १९८४ के नवगीत समारोह में महादेवी वर्मा द्वारा नवगीत दशक-३ का विमोचन किया गया । इसमें शिवमंगल सिंह 'सुमन', शम्भुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, माहेश्वर तिवारी, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. उमाशंकर तिवारी, ओम प्रभाकर, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, राजेन्द्र गौतम, डॉ. पुष्पपाल सिंह आदि ने 'नवगीत' के स्थापित स्वरूप को व्याख्यायित करते हुए कविता की मूल चेतना के सन्दर्भ में तथ्यपरक स्थापनाएं व्यक्त कीं । वस्तुतः नवगीत दशक १,२ और ३ ने हिन्दी जगत में नवगीत की एक निश्चित छवि को स्थापित कर दिया था । इन तीनों संकलनों में जिन-जिन कवियों की रचनाएं सम्पादित हुईं, वे तमाम कवि न तो चिरस्थायी रहे, और न ही नवगीत की परिधि में उन सब की एक जैसी पहचान ही आगे रह पायी । नवगीत दशक-१ में उस समय के अधिकांश नवगीतों में से श्रेष्ठ नवगीतों का संकलन किया गया । सम्पादक डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने इसकी लम्बी भूमिका में यह स्वीकार किया है कि, यह संकलन अज्ञेय के सप्तकों की योजना से बहुत पृथक है । उन्होने नवगीत को किसी साहित्य-आन्दोलन का स्वरूप न मानकर उसे काव्य की युगीन व्यवस्था के अनुरूप एक विकसित काव्य-विधा के रूप में स्वीकार किया, जिसमें उस समय के आम आदमी की सहज संवेदना सन्निहित थी । इस संवेदना में जिन-जिन कवियों को ग्रहण किया गया, उन अधिकांश कवियों की अन्य दूसरे संकलनों में भी प्रकाशित हो चुकी थीं तथा उनके स्वतंत्र संकलन भी सामने आ चुके थे, और यही कारण है कि, इन स्थापित हस्ताक्षरों की विशिष्ट पहचान ने इस संकलन को प्रौढ़ व पुष्ट रूप प्रदान किया था । इस संकलन के समीक्षकों में डॉ. बच्चन त्रिपाठी, अजीत कुमार, डॉ. पुष्पपाल सिंह, डॉ. विनय, डॉ. बाबूलाल गोस्वामी आदि ने बड़ी विस्तृत चर्चाएं एवं व्याख्यान प्रस्तुत किये हैं ।

इस प्रकार तमाम पत्र-पत्रिकाओं एवं वैचारिक मंचों, गोष्ठियों के माध्यम से जो तथ्य सामने आये, उनसे स्पष्ट हुआ कि छान्दस कविता ही लोक-ग्राह्य बन सकती है । गीत ही शाश्वत है । यह 'नवगीत' सदियों से चले आ रहे गीत का ही समसामयिक सोपान है । यह शिल्प एवम् सोच की दृष्टि से परम्परित गीत एवं नयी कविता से सन्दर्भित होकर भी अपना एक पृथक अस्तित्व रखता है जिसे नयी कविता की वैचारिक विरासत प्राप्त हुई है । इन तमाम पड़ावों पर यह प्रमाणित किया गया कि नवगीत किसी निर्धारित पूर्व व्याकरण का काव्य-भाष्य नहीं है, और यही वजह है कि छायावादी, प्रगतिवादी, नयी कवितावादी और समकालीन कवितावादियों ने अन्त में नवगीत को केवल माना ही नहीं अपितु उसकी जीवन्त काव्यात्मकता की प्रभावान्विति को गम्भीरता से स्वीकार भी किया । 'यथार्थवाद' और 'नवगीत' शीर्षक शोध-प्रबन्ध में डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र ने इसे अत्यन्त विस्तार के साथ व्याख्यायित किया, और यह प्रबन्ध १९८४ में चर्चा का विषय भी बना ।

प्रस्तुत अध्ययन नवगीत के सम्पूर्ण ऐतीहृय गाथा को निरूपित करता हुआ उसके सर्वांगीण विकास के रूप-रेखा तैयार तो करता ही है, साथ ही नवगीत के विभिन्न आयामों पर हुई चर्चाओं एवं आलोचनाओं

से भी साक्षात्कार करता हुआ उसके प्रत्यक्ष सामाजिक सरोकार की भूमिका को स्पष्ट करता है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में किसी विवादास्पद, निर्णयात्मक निर्धारण का दुराग्रह न रखकर तटस्थ भाव से नवगीत के समग्र वृत्त पर गहन अध्ययन के द्वारा अपने स्वयं की सोच को व्यक्त करने का भी विनम्र प्रयास किया गया है । यहाँ मुख्य बहस 'नवता' और काव्य के 'गीत तत्व' को लेकर प्रस्तुत हुई है। हालांकि यहनवता हर काल में उसके वर्तमान की नवता को ही इंगित करती है जो कालान्तर में भले ही पुरातन की संज्ञा से अभिहित हो गया हो, क्योंकि आज की नवता भी भविष्य के पाठकों के द्वारा पुरातन के नाम से ही संज्ञायित की जाएगी; इसलिए यह नवता-सम्बोधन वर्तमान के लिए ही सार्थक है । नवगीत की नवता किसी निश्चित विशेषण के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुई, बल्कि नवगीत समग्रतः एक निश्चितार्थी संज्ञा से अभिहित हुआ है, और इसीलिए नवगीत के नव तथा गीत दोनों शब्दों को पृथक-पृथक अर्थों में व्याख्यायित करने की अपेक्षा नहीं जान पड़ती ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में गीत और नवगीत की सीमा रेखाओं को तो विवेचित किया गया है किन्तु इसके लिए कोई निश्चित तिथि या कालखण्ड निर्धारित नहीं किया गया । नवगीत कबीर का भी है, निराला का भी; नागार्जुन का भी है, रामदरश मिश्र का भी । प्रस्तुतिकरण गीत की नवता का द्योतन हर काल में करता है, किन्तु गीत की वस्तु और शिल्प अलग-अलग काल-खण्डों में भिन्न-भिन्न रूप में गठित हुए हैं । इसीलिए हर कालखण्ड का नवगीत अपनी मौलिक पहचान लेकर अवतरित हुआ। कबीर का गीत वर्ण-व्यवस्था की असन्तुलित आचार संहिता पर प्रहार करता है । निराला काव्य के शिल्प एवं आयाम में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने के पक्षधर थे । नागार्जुन गीत को गांव की धूल में आच्छादित करने के समर्थक थे, तो रामदरश मिश्र भारतीय संस्कृति की सहज पहचान कराने और मानवीय संवेदनाओं के स्तर पर जन सामान्य की जिजीविषा को जगाने वाले कवि रहे हैं । सन्त कबीर से लेकर आज तक की परिस्थितियों में आमूल-चूल परिवर्तन हुए हैं । कबीर जहाँ घोषणा करते हैं कि-

'कबिरा खड़ा बजार में लिये लकुटिया हाथ
जो घर फूँके आपणा चले हमारे साथ ।'

वही निराला गीतिका में स्पष्ट उद्घोष करते हैं -

'नव गति, नव लय, ताल, छन्द नव
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्र रव
नव नभ के नव विहग वृन्द को
नव स्वर, नव पर दे ।'

वह नयी पीढ़ी के साहित्य स्रष्टा को एक नये आकाश में विचरण करने हेतु पंख मांगता है और फिर उस आनन्द को व्यक्त करने के लिए नये स्वरों की कामना करता है । नवगीत की उर्वरा भूमि इसी सीमान्त से प्रारम्भ होती है ।

बाबा नागार्जुन जब अकाल के बाद महसूस करते हैं -

'दाने आये घर के अन्दर बहुत दिनों के बाद

धुआँ उठा फिर छत के ऊपर बहुत दिनों के बाद
चमक उठीं घर भर की आंखें बहुत दिनों के बाद
कौवे ने खुजलायी पांखें बहुत दिनों के बाद ।'

तो इसी परम्परा में रमेश रंजक यह भी कहते हैं -

'आज हम हड़ताल पर हैं
हड्डियों से जो चिपक कर रह गयी
उस खाल पर हैं,
यह खबर सबको सुना दो
इश्तेहारों में लगा दो
हम लड़ाई पर खड़े हैं
ठोस मुद्दों पर अड़े हैं
तुल गये हैं जेल भरने के लिए
इस हाल पर हैं ।'

नवगीत की समग्र रचना-यात्रा मानवीय संवेदनाओं की गहन अनुभूतियों को स्पर्श करती हुई आगे बढ़ी है । अतः यह कहा जा सकता है कि, साठोत्तर काल की नवगीत चेतना ने एक निश्चित फ्रेम तैयार कर लिया था जिसके तहत नवगीत की समग्रता को ढालने के प्रयत्न आज भी होते रहे हैं ।

प्रस्तुत अध्ययन नवगीत पर केन्द्रस्थ होते हुए भी आधुनिक काल की अधिकांश काव्य-प्रवृत्तियों की प्रकृति एवं वर्ण्य से भी संस्पर्शित रहा है । यह नवगीत कोई विशेष वाद, आन्दोलन या विचार धारा से पूर्वाग्रह ग्रस्त नहीं रहा और न ही इसकी परिसीमा की कोई निश्चित प्राचीरें या सीमाएं ही अंकित की गई हैं । यही कारण है कि आधुनिक युग के हर कालखण्ड में नवगीत अपने बदले हुए तेवर के साथ प्रस्तुत हुआ है और वह भावना, विचार, संवेदना तथा मनोविकार के विविध पड़ावों पर करवट लेता दृष्टिगत होता है । वस्तुतः नवगीत काव्य की एक नयी प्रवृत्ति है जिसमें समय के बदलाव के साथ-साथ भाषा की नयी भंगिमा, छन्दों के अभिनव और सहज प्रयोग, वर्ण्य का स्वाभाविक और सांस्कृतिक परिवेश तथा प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से कथ्य की धारदार भार इसकी पहचान बन गई है । संवेदना के स्तर पर यह नवगीत 'निराला' से लेकर वीरेन्द्र मिश्र तक तथा सोमठाकुर से लेकर यश मालवीय और कुमार रवीन्द्र तक अपने विविध रूप-रंगों में हँसता-मुस्कराता, रोता-कलपता, खिन्न और उदास होता, उमंगित व उल्लसित होता, थका-हारा, व्यग्र और बेताब-सा, चतुर और चालाक, या फिर निहायत प्रमादी और अनास्थावान होता हुआ अपने लोकाभिमुख विविध आयामी वृत्त का परिचय देता है ।

प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से नवगीत के प्रतिनधि एवं प्रमुख हस्ताक्षरों द्वारा इस तथ्य को भी उद्घाटित किया गया है कि नगरीय अभिजात्य सभ्यता भी कभी न कभी या कहीं न कहीं अतीत के धुंध में डूबे अपने पुरा मूल्यों, अपनी संस्कृति, संस्कारों, अपने घर-परिवार गाँव, खेत-खलिहानों को, अपने अभावों, अवसादों, पीड़ाओं और तकलीफ़ों को बार-बार याद करता है और बार-बार संवेदना

के स्तर पर मुखर होकर इन नवगीतों में अपनी आत्मगाथा कहता हुआ दृष्टिगत होता है ।

नवगीत के प्रमुख विवेचकों ने भले ही एक आचार-संहिता निरूपित करके नवगीत की पहचान को एक निश्चित रूप देने का यत्न किया है किन्तु वह रूप सर्वमान्य नहीं हुआ । खेमेबाजी और गुटबाजी के आरोपणों-प्रत्यारोपणों से जूझता हुआ यह नवगीत आज भी अपने विरल स्वत्व को सुरक्षित रखे हुए है । जैसे-प्रयोगवाद की कविता क मूल उद्घोष वामपंथी रुझान की ओर अभिमुख हुआ था, या प्रयोगवाद में इसी साम्यवादी चेतना कुछ नये अन्दाज से प्रस्तुत करने का हठाग्रह रहा हो या नयी कविता में पाश्चात्य वैचारिकी का सीधा प्रभाव अंकित रहा हो किन्तु नवगीत किसी भी धारा से बंधकर पराग्रही धारा में प्रवाहित नहीं हुआ है । नवगीत इन सभी मानद दृष्टिकोणों का उद्घाटन करता हुआ अपनी मौलिक प्रतिष्ठा को स्थापित किए हुए हैं ।

वैसे तो हिन्दी काव्य की प्रायः प्रत्येक विधा अपने आप में सम्पन्न और समृद्ध रही है किन्तु कविता के बदलते मिजाज़ ने इसे अनके मोड़ और ठहराव भी प्रदान किये हैं । छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद जैसे मोड़ कविता को एक नयी पहचान भर दे पाये थे । किन्तु नवगीत इस काव्य-यात्रा को कोई मोड़ न होकर एक विरल प्रवाह और एक विशिष्ट गति के रूप में सामने आता है जो अपेक्षाकृत कविता के किसी भी रूप या संस्कार से कहीं अधिक दीर्घजीवी और गम्भीर रहा है ।

आधुनिक काल के हर पड़ाव पर गीत या नवगीत के पदचिह्न देखे जा सकते हैं । विचार या आकार के अनेकानेक पूर्वाग्रही विचारों ने भी इसकी गति मन्द नहीं होने दी । यही कारण हैकि, अपनी रागात्मकता और लयात्मकता के सम्पन्न कोश पर नवगीत इतराता रहा है और आधुनिक काल के प्रारम्भ से वर्तमान तक वह नयी ताज़गी और ज़िन्दादिली के साथ आगे बढ़ता रहा है । भारतेन्दु काल का गीतकार या नवगीतकार, जो अपनी विशिष्ट पहचान बनाते हुए स्थापित हुआ था उसमें राग, लय और छन्द की त्रिवेणी अपने सौम्य, शालीन और अनुशासित रूप में विद्यमान रही थी ।

दैह्य और आत्मिक दोनों ही रूपों में सम्पन्न यहनवगीत अपनी रूप-सज्जा के लिए जहां एक ओर विविध रंगी, सुन्दर और आकर्षक, सरल और सहज लघुवृत्तीय छन्दों में निबन्धित होकर अपनी दैहिक सज्जा के लावर्ण्य को उद्घाटित करता है वही दूसरी ओर उसका भाव-सौन्दर्य, विचारों की विरल गहनता, संवेदनाओं की अभिनव ऊँचाइयाँ और सर्वत्र एक स्पन्दित जीवन्तता उसके आत्मिक सौन्दर्य को व्यक्त करती हैं ।

प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से नये और पुराने अनेक स्थापित रचनाकारों, गीतकारों एवं नवगीतकारों के कृतित्व को विश्लेषित-विवेचित करते हुए नवगीत के अधुनातम रूप को भी मीमांसित किया गया है । इस गीत-यात्रा में डॉ. शम्भुनाथ सिंह, उमाकान्त मालवीय, उमाशंकर तिवारी, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', ठाकुर प्रसाद सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, माहेश्वर तिवारी, ओम प्रभाकर, अनूप अशेष, श्री कृष्ण तिवारी, राजेन्द्र गौतम, रवीन्द्र भ्रमर, डॉ. केदारनाथ सिंह, डॉ. रामदरश मिश्र, यश मालवीय, बुद्धिनाथ मिश्र, गुलाब सिंह, दिनेश सिंह, नईम, कुमार रवीन्द्र, अखिलेश कुमार सिंह, कुमार शिव, जहीर कुरेशी, राम सेंगर, सुधांशु उपाध्याय, अमरनाथ श्रीवास्तव, विद्यानन्दन राजीव, विनोद निगम, कुंअर बेचैन, सोमठाकुर, किशन सरोज, वीरेन्द्र आस्तिक, शिव बहादुर सिंह 'भदौरिया', शीलेन्द्र सिंह, कैलाश गौतम, अशोक अन्जुम,

योगेन्द्र दत्त शर्मा, डॉ. सुरेश, डॉ. विष्णु विराट, घनश्याम अस्थाना, डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. शान्ति सुमन तथा विजय किशोर तिवारी प्रभृति हस्ताक्षरों की अभिनव रचनाओं को यहाँ विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषित किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध हिन्दी नवगीत-यात्रा का एक ऐसा जीवन्त दस्तावेज हैं, जिसमें प्रतिनिधि नवगीतकारों के कृतित्व को सामने रखकर नवगीत की अस्मिता के वैविध्य को अनके कोणों से समझा-समझाया गया है । कथ्य, शिल्प और अभिव्यंजना के स्तर पर नवगीत की सतत अग्रगामी यात्रा को रेखांकित करते हुए उसमें हुए अनके बदलावों को तथा व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्धों की अनेकरूपता का स्पर्श करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध नवगीत के सम्बन्ध में किसी निश्चित दावे या स्थापना का ऐलान तो नहीं करता किन्तु हिन्दी की वैविध्यपूर्ण काव्य-यात्रा के प्रसंग में नवगीत की वरिष्ठता, उसकी सार्थकता और लोकाभिमुख उसकी प्रकृति का लेखा-जोखा अवश्य प्रस्तुत करता है । यहां लेखक को बिना किसी दुराग्रह या पूर्वाग्रह के तटस्थ भाव से उन तमाम नये और पुराने नवगीतकारों को परीक्षित एवं विवेचित किया है जो एक निश्चित पहचान और विशिष्टताओं के साथ अग्रसर हुआ है । यहां यह भी रेखांकित किया गया है कि नवगीतों के द्वारा मानवीय संवेदनाओं की जिन ऊँचाइयों को सहज और स्वाभाविक रूप में परिलक्षित किया गया है और जो आम आदमी की उद्भावनाओं के अत्यधिक निकट भी है। वह काव्य की अन्य विधाओं में दृष्टिगत नहीं होता । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में समस्त गीतकारों का लेखा-जोखा देना अपेक्षित नहीं था । सन्दर्भ एवं विषय के अनुरूप जिन नवगीतों को तथा रचनाकारों को जहाँ भी अपेक्षित और अनिवार्य समझा गया है, उद्धृत किया गया है । इस प्रकार तटस्थ विवेचना के आधार पर निबन्धित यह शोध-प्रबन्ध नवगीत के सन्दर्भ में अपने मौलिक रूप में आपके सामने प्रस्तुत हुआ है ।